# स्मृति और अनुभव के असमंजस में संस्कार

प्रफुल्ल कोलख्यान

'संस्कार' यू. आर. अनन्तमूर्ति का बहुचर्चित उपन्यास रहा है। इसके बारे में परस्पर विरोधी मान्यताएँ भी रही हैं। इस पर जब इसी नाम से पट्टाभि रामा रेड्डी के निर्देशन में फिल्म बनी तो उसको फिल्म सेंसर बोर्ड ने पास करने से मना कर दिया था। बाद में इसे जारी किया गया और इसे कई पुरस्कार भी मिले। इसे कन्नड़ साहित्य और फिल्म में युगांतरकारी माना गया। 1965 में यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था। आज जब हम इस पर विचार करते हैं, हमारे ऊपर कई तरह के दबाव एक साथ काम करते हैं। पहली बात तो यही है कि समय-सिद्ध होने के बाद इस पर असहमति या असंगति की बात उठाना जोखिम भरा है। दूसरी बात यह है कि इसके रचनाकाल से लगभग 50 साल के बाद की दुनिया काफी बदली हुई है। यह बदलाव समझ और संवेदना का तो है ही राजनीतिक-सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना का भी है। हम जब इसके हिंदी अनुवाद को पढ़ते हैं और उस पर हिंदी में विचार करते हैं तब यह भी अपने आप में एक बदलाव है और इस पर, व्यापक अर्थ में जिसे हिंदी समाज कहा जाता है उसकी संवेदना के असर से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। ऐसी कई बातों को ध्यान में रखकर ही इस पर बात की जा सकती है।

## रचना की पृष्ठभूमि

लेखक के अनुसार, संस्कार की मुख्य रचना-चेतना लेखक के मन में तभी प्रकट हो गई थी जब वह मात्र 13 साल की उम्र में था। लोग प्लेग के प्रकोप का शिकार बन रहे थे। रुढ़िग्रस्त डॉक्टर हरिजन रोगियों के इलाज के लिए उनकी बस्ती में नहीं जा रहे थे और उनकी मौत

पर उनको उनकी झोपड़ियों में ही जला दिया जा रहा था। कैसा भयानक अनुभव! एक और घटना उल्लेखनीय है। एक रुढ़िग्रस्त ब्राह्मण परिवार का सदस्य सेना से सेवानिवृत्त होकर गाँव वापस आया था, वह न सिर्फ अंगरेजी बोलता था, बल्कि बच्चों को ड्रील बगैरह भी करवाता था और उसने लेखक को बहुत हद तक प्रभावित किया था। उसे एक काली अछूत लड़की से बहुत ही प्राथमिक स्तर पर गुप्त प्रेम भी था। खुद लेखक, जिसके घर में महात्मा गाँधी की पत्रिका हरिजन  पढ़ी जाती थी, का अनुभव भी इस तरह का रहा था। उसका अनुभव मत्स्यगंधा और पराशर के मिथकीय संदर्भ से जुड़कर सांस्कृतिक संवेदना का हिस्सा बन गया। ध्यान में बस यह रखना है कि संस्कार की पृष्ठभूमि में लेखक के जीवन की कुछ परिस्थितियाँ सहज सक्रिय रही हैं। इस सहज सक्रियता की भी अपनी पूर्वकथा है। 1964 में जब लेखक 32 साल की उम्र का था उसे इंग्लैंड में वर्गमेन की फिल्म ‘द सेवेंथ सील’ को अपने मित्र, गाइड और प्रसिद्ध उपन्यासकार मॉलकॉम ब्रएडबरी के साथ देखने का मौका मिला। क्रिशचिएन विश्वास के संकट की पृष्ठभूमिवाली इस फिल्म और मॉलकॉम की प्रेरणा से लेखक के अंदर का जमा अनुभव सक्रिय हो उठा। लेखक के अनुसार एक सप्ताह में यह अनुभव संस्कार नामके इस उपन्यास के रूप में सामने आ गया।

## जीवन अनुभव का उपन्यास  में अंतरण

लेखक के इस जीवन अनुभव की पृष्ठभूमि में हम संस्कार को पढ़ते हैं। संस्कार को पढ़ते हुए यह बात समझ में आती है कि जीवन अनुभवों के किसी कलाकृति में ढालने के जोखिम क्या होते हैं! जिस बात को लेखक ने वास्तविक में घटित होते हुए देखता है और जो उसकी स्मृति का स्वाभाविक हिस्सा बन जाती हैं, उन बातों एवं स्मृतियों का किसी कलाकृति का हिस्सा बनने में कौन-कौन-सी बाधाएँ होती हैं, इन्हें ‘संस्कार’ के माध्यम से देखना दिलचस्प भी है और परेशानी भरा भी है। सच को कल्पना से जोड़ना और फिर उसे सांस्कृतिक क्षितिज प्रदान करना बहुत ही मुश्किल काम होता है। यह सच है कि किसी कृति को प्रथमतः लेखक की रचना पृष्ठभूमि में ही पढ़ा जाना चाहिए, लेकिन किसी कृति को पढ़े जाने का प्रथमतः उस कृति के पाठ का अंततः नहीं हो सकता है। यह रचना तब बनती है जब लेखक की रचना-भूमि पाठक की मनोभूमि से मिलकर अपने पाठ के उत्तर-चरित के सृजन का सूत्रपात कर सके। यह मानने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि किसी भी सांस्कृतिक पाठ का उपरांत ही उसका वास्तविक और सांस्कृतिक उपादान बनाता है। कोई भी रचना अपने उपादान का निमित्त ही होती है। रचना अपना निमित्त और उपादान दोनो हो यह प्राकृतिक रचना के मामले में तो संभव है किंतु सांस्कृतिक रचना के मामले में यह संभव नहीं होता है।

उपन्यास के प्रारंभ का संबंध आधुनिकता से है। सांस्कृतिक गतिविधियों के अंतर्गत परंपरा से प्राप्त मिथकीय देव-चरित पर आधारित महागाथाओं से बाहर वास्तविक मानव-चरित पर आधारित लघुगाथाओं के लिए जगह का बनना इसका प्रमुख उत्प्रेरक रहा है। परंपरा का गहरा संबंध स्मृति से और आधुनिकता का गहरा संबंध अनुभव से होता है। पूरी तरह से परंपरा का निषेध जीवन में संभव नहीं होता है, कदाचित उचित भी नहीं है। स्वभावतः जीवन में स्मृति का महत्त्व बना रहता है। मनुष्य के विकास में स्मृति का बहुत महत्त्व है। इसके साथ ही यह भी मानने में झिझक नहीं होनी चाहिए कि जीवन में स्मृति के साथ ही विस्मृति का भी अपना महत्त्व होता है। किसे याद रखा जाये और किसे भुला दिया जाये इसके लिए जिस विवेक की जरूरत होती है उसे इतिहास विवेक कहते हैं। विवेक अकेला पर्याप्त नहीं होता और उसकी भरपाई के लिए इतिहास-बोध की जरूरत होती है। सक्रिय इतिहास-विवेक और इतिहास-बोध मिलकर परंपरा से सलूक का कौशल विकसित करते हैं। अनुभव को अतिक्रमित कर स्मृति में उतरने से परंपरा से सलूक का यह कौशल रोकता है। जीवन में और इसलिए सृजन में भी, स्मृति के साथ ही अनुभव का भी महत्त्व बना रहता है। किसी कृति की रचना-प्रक्रिया, पाठ-प्रक्रिया और कृतिकार की मनोरचना पर ध्यान दें तो यह बात साफ-साफ दिख सकती है कि कभी स्मृति अनुभव का स्थानापन्न बनने लगती है तो कभी अनुभव स्मृति की काया में अनुप्रवेश करने लगता है। जीवन अनुभव के उपन्यास में अंतरण की प्रक्रिया इन प्रकरणों से भी गुजरती है। इसे ध्यान में रखकर यू. आर. अनन्तमूर्ति के उपन्यास संस्कार के पाठ में उतरना चाहिए।

## संस्कार के तीन प्रमुख पात्र

1. प्राणेशाचार्य: अग्रहार के प्राण पुरुष। काशी से धर्म शास्त्र अध्ययन। वेद-वेदांग के पारंगत। दुर्वासापुर के संस्कारवान धर्म पालक। प्रारंभ में परंपरा के एकनिष्ठ संपोषक। नारणप्पा के प्रति-पक्ष। नारणप्पा की संगिनी के संपर्क में आने के कारण आत्म-संतुष्टि, आत्म-हीनता और आत्म-परिवर्त्तन के अंतर्द्वंद्व से सामना।

2. नारणप्पा: अग्रहार में परंपरा-च्युत। आधुनिकता के प्रतीक-पुरुष। दुर्वासापुर में ब्रह्माचार विरोधी व्यक्तित्व और उपन्यास में स्मृति स्वरूप उपस्थित।

3. चन्द्री: तथाकथित अछूत जाति की महिला। नारणप्पा की संगिनी। नारणप्पा के तथाकथित पतन की कारिका। प्राणेशाचार्य के संदर्भ में आत्म-संतुष्टि, आत्म-हीनता और आत्म-परिवर्त्तन की उत्पादिका।

इनके अलावे पद्मिनी, लक्ष्मणाचार्य, गरुड़ाचार्य, पुट्ट और कई अन्य पात्र हैं जो कथा को तय दिशा में आगे बढ़ाने की लेखकीय योजना में अपनी भूमिका अदा करते हैं। सचेत रूप से यह ध्यान में रखना चाहिए कि 'संस्कार' की मूल कथा के केंद्र में आधुनिकता से समर्थित नारणप्पा का ब्राह्मण-व्यवस्था-विरोधी आचरण नहीं नारणप्पा का शव है और समस्या नारणप्पा के दाह संस्कार की है।

## संस्कार की कथा योजना

प्रकाशकीय में ठीक ही रेखांकित किया गया है कि यथार्थ ब्यौरों से भरी हुई एक प्रतीकात्मक कथा है--- दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण-ग्राम के ह्रास की। इसे एक धार्मिक उपन्यास कहकर भी पुकारा गया है जबकि इसके अनेक प्रमुख पात्र धर्म और उनकी परंपरा से जाने-बूझे विद्रोह करते हैं, या उन से कभी परिचित ही नहीं हुए। इसके नायक ब्राह्मण श्रेष्ठ प्राणेशाचार्य हैं, या ब्राह्मणवादी रूढ़ियों का आजन्म विद्रोही नारणप्पा, जिसकी मृत्यु से उपन्यास का आरंभ होता है?---- इसका निर्णय करना आज भी सुसंस्कृत पाठकों को दुरूह जान पड़ेगा!

केंद्रीय कथा स्थान है दुर्वासापुर। दुर्वासापुर एक गाँव है। इस गाँव में ब्राह्मण जाति के अलावे अन्य जातियाँ भी रहती हैं, किंतु प्रकाशकीय में इसे दक्षिण भारत का ब्राह्मण-गाँव कहा गया है और कथा को ब्राह्मण-गाँव के ह्रास की कथा बताया गया है। इससे दो सूचनाएँ मिलती हैं पहली यह कि हिंदू धर्म में निहित वर्ण-व्यवस्था की जकड़न इतनी जबर्दस्त है कि इसमें मनुष्य ही नहीं गाँव भी सिद्धांततः ब्राह्मण हो सकते हैं और व्यवहारतः होते हैं। क्योंकि ब्राह्मणेतर आबादी अग्रहार से बाहर रहती है। दूसरी सूचना यह कि इसके नायकत्व को लेकर असमंजस है कि इसके नायक ब्राह्मण श्रेष्ठ प्राणेशाचार्य हैं, या ब्राह्मणवादी रूढ़ियों का आजन्म विद्रोही ब्राह्मण नारणप्पा लेकिन इस बात को लेकर कोई असमंजस नहीं है कि इसकी कथा वस्तुतः ब्राह्मण-गाँव के ह्रास की कथा है, उसके उत्थान की कथा यह बिल्कुल नहीं है। इन सूचनाओं का निवेश संस्कार की आलोचना के संदर्भ में अनिवार्यतः उपयोगी है।

## संस्कार की आलोचना

1965 जब यह उपन्यास रचा गया, भारत को राजनीतिक रूप से आजाद हुए 18 साल हो चुका था। भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के संवैधानिक स्वरूप का मूलाधार स्पष्ट और प्रकट हो चुका था। इसके बावजूद कुछ सिद्धांतिकी ऐसी भी है जो भारत को एक राष्ट्र न मानकर अनगिनत समुदायों का ढीला-ढाला गुच्छा माने जाने का निष्कर्ष देती रही है। इनका जोर इस बात पर भी रहा है कि इन समुदायों को अपनी इसी ऐकांतिक मौलिकता की शुद्धता में

बने रहना चाहिए। मिश्रण और आत्म-विस्तार की समावेशी प्रक्रिया की किसी भी सामाजिक-राजनीतिक-आर्थिक पद्धति से सांस्कृतिक दूरी बनाये रखनी चाहिए। स्मृति और कई बार आत्म-श्रेष्ठता के लिए उपयोगी कल्पित समृति के सहारे अपनी वास्तविक और काल्पनिक परंपराओं के साथ जीवन निर्वाह करना चाहिए। आत्म-पुनर्रचना के लिए आत्म-विस्तार, आत्म-विसर्जन और आत्म-उत्थान की किसी भी आधुनिक परियोजना से बचना चाहिए। मुक्ति का राजपथ अपने समुदाय के अंदर है, अपने समुदाय से बाहर सिर्फ अपरिहार्य और अंतहीन भटकाव है।

प्रेमचंद लिखित 'गोदान' हिंदी का एक प्रसिद्ध उपन्यास है। 'गोदान' दस्तावेजी रूप से सामाजिक उपन्यास है, जिसका रचनाकाल है 1936, अर्थात भारत की राजनीतिक आजादी से 11 वर्ष पहले। भारत की राजनीतिक आजादी से 11 वर्ष पहले अर्थात, जब भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के संवैधानिक स्वरूप का मूलाधार पूरी तरह से स्पष्ट और प्रकट नहीं हुआ था। यू. आर. अनन्तमूर्ति का बहुचर्चित उपन्यास 'संस्कार' समुदाय आधारित उपन्यास है, जिसका रचनाकाल है 1965, अर्थात भारत की राजनीतिक आजादी के 18 साल बाद। 18 साल बाद अर्थात, जब भारत की राष्ट्रीय अस्मिता के संवैधानिक स्वरूप का मूलाधार पूरी तरह से स्पष्ट और प्रकट हो चुका था। 'गोदान' और 'संस्कार' के रचनाकाल में 30 वर्ष का अंतराल है। गोदान में नवाचार की संभावनाओं की तलाश है। संस्कार में पुराचार के टूटने की अंतर्व्यथा है। होरी की मृत्यु के साथ 'गोदान' का अंत होता है और नारणप्पा की मृत्यु के साथ 'संस्कार' का प्रारंभ। 'गोदान' और 'संस्कार' दोनों का रचना-सूत्र मृत्यु से जुड़ा है। 'संस्कार' में कई मौत है। चूहों की मौत की भी अनदेखी नहीं की जा सकती है। चूहों की मौत प्लेग के फैलने की सूचना है। 'संस्कार' में चूहों की मौत और हरिजनों की मौत लगभग समान रूप से वर्णित है। अद्भुत है कि मृत्यु के पीछे का हाहाकार और आर्त्तनाद न चूहों की मौत के मामले में वर्णित है और न हरिजनों की मौत के मामले में ही वर्णित है!

यह भी अद्भुत और दुखद है कि 'संस्कार' उपन्यास के दुर्वासापुर में हरिजन पुरुष और ब्राह्मण महिला चरित और व्यक्तित्व-सौष्ठव के विकास का कोई प्रसंग नहीं है। चन्द्री हो या पद्मावती सौंदर्य, सौष्ठव और लावण्य से भरपूर हैं। इनकी अपनी उपस्थिति उतनी ही है जितनी की जरूरत प्राणेशाचार्य के व्यक्तित्व या चरित के लिए जरूरी है। ब्राह्मणवादी रूढ़ियों का पोषक प्राणेशाचार्य भी ब्राह्मण ही हैं और ब्राह्मणवादी रूढ़ियों का आजन्म विद्रोही नारणप्पा भी ब्राह्मण ही हैं। सिक्का के दोनों पहलू अंततः और अनिवार्यतः एक ही सिक्का के पहलू होते हैं, और यह 'संस्कार' से भी सिद्ध

है। प्राणेशाचार्य और नारणप्पा दोनों ही एक ही ब्राह्मण की भिन्न छायाएँ हैं। प्राणेशाचार्य और नारणप्पा एक ही बिंब के दो प्रतिविंब हैं। इसी प्रकार चन्द्री और पद्मावती भी एक ही हैं यह अलग बात है कि कथा-प्रयोजन से इनका नाम और स्थान बदल जाता है। असल में, लेखक के अपने अनुभव और स्मृति के साथ लेखक के अपने ही आधुनिक विवेक के साहसहीन बरताव और निःशब्द टकराव की अंतर्ध्वनि इस उपन्यास का रचना-सार है। इस अंतर्ध्वनि की अनुगूँजें पौर्वात्यवाद (ओरिएंटलिज्म) और उत्तर-आधुनिकतावाद के दोआब के बीच से बहती हुई युरोपीय बौद्धिक भूमि पर एक भिन्न प्रकार के पाठानुभव को प्रतिष्ठित करती है।

'संस्कार' की अनुगूँजों का भारतीय संदर्भ बौद्ध, इझवा, लिंगायत, लोकायत और भक्तिकाल की सामाजिक चेतना तथा नव-बौद्धों एवं दलित-स्त्री के समाज-राजनीतिक आग्रहों के अंतर्प्रवाहों के बीच ही बन सकता है। 'संस्कार' असल में लेखक की बाल्य-स्मृति के औपन्यासिक पुनर्गठन का प्रयास है। इधर जीवन के हाशिये पर पुरानी के साथ नई सलवटें उभर रही हैं। कहीं ऊपर से दिखनेवाली ये सलवटें भीतर में सक्रिय फाल्ट लाइनों की सूचना भी दे रही हैं। उपन्यास में हाशिये के समुदाय की अंतर्कथानकों का आग्रह बढ़ रहा है। हाशिये पर उपलब्ध जीवन की सामाजिक संरचना के हाशिये के कथानकों का उपन्यास में ढलना और बात है तथा हाशिये पर उपस्थित सामाजिक संरचना के मुख्यांशों का हाशिये के कथानक की तरह उभरना और बात है। ब्राह्मण जीवन भारतीय संदर्भ में किसी तरह से हाशिये का जीवन नहीं हो सकता है। संस्कार में उपस्थित ब्राह्मण जीवन का कथानक हाशिये पर उपस्थित मुख्यांश का कथानक है। संस्कार के नायकत्व को लेकर जो अंतर्घाती असमंजस है वह ब्राह्मण-गाँव के ह्रास की कथा को भारतीय जीवन के उत्थान की कथा में बदलने नहीं देता है। आज के भारतीय संदर्भ में 'संस्कार' दलित-स्त्री के समाज-राजनीतिक और सांस्कृतिक आग्रहों के अंतर्प्रवाहों की अवहेलना करता है या नहीं इस पर मत-भिन्नता हो सकती है लेकिन इतना तो, निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि यह सृजनात्मक स्तर पर इन अंतर्प्रवाहों को संबोधित या इनकी पहचान नहीं करता है। ब्राह्मण-गाँव की इस ह्रास-कथा को ब्राह्मण जीवन की सामुदायिक दृष्टि से बाहर जाकर पढ़ पाना मुश्किल है। यह मुश्किल इसे आज के भारतीय संदर्भ में कोई महत्त्वपूर्ण जगह नहीं बनाने देता है। निःसंकोच कहा जा सकता है कि स्मृति और अनुभव के रचनात्मक निवेश के लिए इतिहास-विवेक और इतिहास-बोध मिलकर परंपरा से सलूक का जो संस्कार यू. आर. अनन्तमूर्ति अर्जित करते हैं, जो कौशल विकसित करते हैं, अपनी सदाशयताओं के बावजूद, यू. आर. अनन्तमूर्ति का उपन्यास 'संस्कार' स्मृति और अनुभव के असमंजस के द्वैध से उबरकर उसका सामाजिक निर्वाह नहीं कर पाता है।

इस सामग्री के  उपयोग के लिए लेखक की सहमति अपेक्षित है।
सादर, प्रफुल्ल कोलख्यान